National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2022; 1(40): 226-233
© 2022 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. अंशु सिंह झरवाल
हिंदी विभाग,
लक्ष्मीबाई कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

’

Correspondence:
डॉ. अंशु सिंह झरवाल
हिंदी विभाग,
लक्ष्मीबाई कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शृंगार रस के आलोक में राग प्रकृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अंशु सिंह झरवाल

सारांश

रति शृङ्गार रस का स्थिर भाव है, जो मन के भीतर हमेशा संस्कार (वासना) रूप में रहता है, जिसका सामान्य अर्थ प्रीति या आसक्ति है, जिसकी अन्तिम दशा अनुपम रस या आनन्द के स्वाद की अनुभूति है। यथार्थतः रति में राग का ही प्रमुख भाव है, जो काम के बिना सम्भव नहीं है। काम-भाव के अभाव में प्रेम की गहन भावना (राग) की सम्भावना नहीं हो सकती है। इस सम्बन्ध में शारदातनय का चिन्तन निखरा हुआ हैं :

''स एव चेदगुणद्रव्यदेशकालादिभिर्हृदि ॥
रज्यते दीप्यते चित्ते स राग इति कथ्यते।''[1]

कि स्त्री और पुरुष के अन्दर सृष्ट होने वाला स्नेह ही जब गुण, द्रव्य, देश, काल आदि के साथ हृदय में रहने से चित्त रंग जाता है या चमक उठता है, वही राग कहलाता है। अर्थात् 'रञ्ज' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से रञ्ज् +घञ् = राग निष्पन्न होता है।

शिंगभूपाल की दृष्टि में –

''दु:खमप्यधिक चित्ते सुखत्वेनैव रज्यते।
येन स्नेहप्रकर्षेण स राग इति गीयते॥''[2]

अत्यधिक दुख भी, चित्त में जिस स्नेह की उत्कृष्टता से सुख रूप से रंजित करता है, वह राग कहलाता है। तात्पर्य, कि अधिक दुख में भी स्नेह की वृद्धि होने से सुख जैसी आनन्दानुभूति होती है, उसे राग कहा जाता है।

यहाँ स्नेह को समझना भी आवश्यक है। स्नेह में विषयों (नायक या नायिका) के मन में होने वाली एक तरलता (द्रवता) होती है तथा भय या आशंका के स्थान पर अपनेपन की भावना ही विद्यमान रहती है। इसमें अंतरंगता अपनी पूर्ण स्थिति में पहुँच जाती है। जब प्रिय या प्रिया की गहन दृष्टि से भी मन सन्तुष्ट नहीं होता है, तब वे दोनों स्पर्श सुख से अन्तःकरण में लीन हो जाना चाहते हैं।

बीज शब्द : राग प्रकृति, श्रृंगार रस, अभिज्ञानशकुंतलन, काव्यशास्त्रीय रीतियां।

आचार्य शारदातनय और शिङ्गभूपाल ने राग के तीन भेद माने हैं। शारदातनय इन तीनों का क्रम नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा निर्धारित किया है तथा मञ्जिष्ठा को श्रेष्ठ, नीली को मध्यम और कुसुम्भ को अधम बताया है। रुद्रभट्ट ने शृंगारतिलक में भी राग के तीन प्रभेद बतायें हैं।

रागों के नामोल्लेख में आचार्यों में मत वैभिन्न्य हैं। रूप गोस्वामी ने नीलिमा और रक्तिमा दो भेद माने हैं। जिसमें नीली और श्यामा के कारण नीलिमा की उत्पत्ति होती है, अर्थात् नीलिमा के दो रूप हैं – नीली और श्यामा। रक्तिमा के भी दो भेद होते हैं – कुसुम्भ तथा मञ्जिष्ठा।

''नीलीश्यामाभवो रागो नीलिमा कथ्यते बुधे: ।''[3]

अन्यच

''राग: कुसुम्भमञ्जिष्ठासम्भवो रक्तिमा मत: ।''[4]

इस तरह उनके मत में राग के चार भेद - नीली, श्यामा, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठा हो जाते हैं।

कवि कर्णपूर ने इनसे अधिक और एक राग का भी निरूपण किया है। वे कहते हैं, कि राग की चार

प्रकार की प्रकृति होती है - नैल, कुसुम्भ, मांजिष्ठा और हारिद्र । अलंकार कौस्तुभ में हरिद्रा राग की विशेषता के बारे में बताया है, कि हल्दी का रंग शुरुआत में बहुत सुन्दर लगता है, परन्तु समय के साथ उसकी रंगत कम हो जाती है। उसी प्रकार प्रेम की स्थिति होती है।
राजा भोज ने शृंगार मञ्जरी कथा में इनकी संख्या 12 बताई हैं, जो इस प्रकार हैं – नीली, रीति, अक्षि राग, मंजिष्ठा, कषाय, सकल, कुसुम्भ, लाक्षा, कर्दम, हरिद्र, रोचना और काम्पिल्य।
साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के विचार में :
''आदौ वाच्य: स्त्रिया राग: पुंस: पश्चात्तदिङ्गितै:
आदौ पुरुषानुरागे संभवत्यप्येवमधिकं हृदयङ्गमं भवति।''[5]
पहले स्त्री के अनुराग वर्णन करने चाहिए। तत्पश्चात् उसकी रंगीन चेष्टाओं को देखकर पुरुष का अनुराग निबद्ध करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा, कि पुरुष का अनुराग पहले सम्भव होने पर भी, पहले स्त्री का अनुराग होने से अधिक सुन्दर लगता है।
हिन्दी साहित्य के आदिकाल, मध्यकाल और मुख्य रूप से शृंगारकाल के कवियों ने राग को ही अपना मुख्य विषय बनाया था। रीतिकाल के शृंगार रस के वर्णन, नायक-नायिका के भेदोपभेद, राधा-कृष्ण का प्रेम-चातुर्य या फिर कृष्ण की गोपिकाओं के मध्य की गई अनेक लीलाओं में राग के ही विविध रूपों का चित्रण हुआ है। अब हम उपर्युक्त मतों को दृष्टि में रखते हुए क्रमशः नीली, श्यामा, कुसुम्भ, मंजिष्ठा और हरिद्रा रागों की उदाहरण सहित विवेचना करेंगे।

नीली राग

शारदातनय ने कहा, कि जो क्षालित राग न अधिक दूर रहता है और न अधिक शोभित होता है, उसे ही नीली राग कहते हैं। आचार्य शिङ्ग भूपाल ने स्पष्ट करते हुए कहा, कि नीली राग ऐसा होता है, जो न अधिक छिपा रहता है और न अधिक दीप्त रूप में होता है। आचार्य रूप गोस्वामी के अनुसार नीली राग को प्रेमात्मक, नाश की सम्भावना से रहित, बाहर से प्रकाशित न होने वाला कहा है। उदाहरणार्थ :
''प्रसन्नविशदाशया विविधमुद्रया निर्मितं,
प्रातरणमपि त्वया गुणतया सदा गृह्णती।
तथा व्यवजहार सा व्रजकुलेन्द्र चन्द्रावली,
सखीभिरपि तर्किता त्वयि यथा तटस्थेत्यसौ॥''[6]
हे ब्रज कुलेन्द्र ! पूर्णतया निर्मल तथा प्रसन्न चित्त वाली और तुम्हारे द्वारा अनेक प्रकार की प्रतारणाओं को गुण-रूप मानने वाली उस चन्द्रावली ने इस प्रकार की तर्क पूर्ण बातें कहीं, जिसके आधार पर सखियों ने उसे तुम्हारे प्रति तटस्थ ही समझा। यहाँ राग बाहर से प्रकाशित नहीं हो रहा है। यदि साफ शब्दों में कहें, तो नीली राग में बाह्य प्रदर्शन नहीं होता, परन्तु प्रेम (राग) रग-रग में बसा होता है।
कुमारसम्भव में कालिदास ने कहा :
''यदैव पूर्वे जनने शरीर सा दक्षरोषात् सुदती ससर्ज।
तदा प्रभृत्येव विमुक्तसङ्ग: पति: पशूनामपरिग्रहोऽभूत्॥''[7]
सुन्दर दन्तपंक्ति वाली पार्वती ने अपने पूर्व जन्म में पिता दक्ष पर क्रोध करके जब से अपने शरीर का योगाग्नि में त्याग किया था, तभी से पशुपति शंकर ने भी विषय भोगों में आसक्ति छोड़कर दूसरी स्त्री से विवाह नहीं किया। यहाँ शिव का सती के प्रति नीली राग व्यंजित है, क्योंकि उनके चित में स्थित राग सती के साथ समागम के अभाव का निश्चय हो जाने पर भी समाप्त नहीं हो रहा है तथा विषयाभाव से प्रकाशित भी नहीं हो रहा है।
विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा के सौन्दर्य और यौवन को देखकर स्वर्ग-अप्सरा उर्वशी अनुरक्त हो जाती है। कालिदास पुरूरवा के मुख से कहलवाते हैं :
राजा – ममाप्येतदाशन्सि मनः। तया खलु प्रस्थाने -
''अनीशया शरीरस्य हृदयं स्ववश मयि।
स्तनकम्पक्रियालक्ष्यैनर्यस्तं नि:श्वसितैरिव॥''[8]
पुरूरवा का मन भी ऐसा ही अनुभव कर रहा है। उर्वशी के प्रस्थान के समय उसके कम्पित दोनों स्तनों से प्रगटित दीर्घ नि:श्वासों से मानो उसने अपने हृदय को मुझे (राजा) समर्पित कर दिया हो। उर्वशी के मन का भाव मन में ही गोपित है, उसने उसे अभिव्यक्त नहीं किया है, तथापि बाह्य रूप से अप्रगटित है, किन्तु शारीरिक स्पन्दन से प्रकटित प्रेम इतना दृढ़ था, कि प्रियतम पुरूरवा तक सम्प्रेषित हो ही गया।
अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला के नव यौवन को देखकर, राजा दुष्यन्त उसके प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। वे कहते हैं –
''वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभि: कर्णं दादात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्या:॥''[9]
यद्यपि शकुन्तला मेरी वाणी से वाणी नहीं मिलाती है, किन्तु मेरे बोलते समय मेरी ओर कान लगाये रहती है, भले ही मेरे मुख के सम्मुख नहीं ठहरती हैं, किन्तु उनकी दृष्टि अन्य विषय की ओर भी अधिक नहीं है। प्रगल्भा (साहसी,निडर) शकुन्तला प्रिय पुरुष के सामीप्य से रोमांचित और कंटकित है, किन्तु प्रेम की इस ऊष्मा को वह संकोचवश अभिव्यक्त भी नहीं कर पा रही है।
बिहारी के दोहे में नायिका की अभिरति का सौन्दर्य उल्लेखनीय है :
''प्रेम अड़ोलु, डुलै नहीं मुँह बोलैं अनखाइ।
चित उनकी मूरति बसी, चितवनि माँहि लखाइ॥''[10]
सखी के पूछने पर, वह (प्रेम को) छिपाने के प्रयास में झुँझला उठती है। सखी कहती है, कि तेरे नाराज होकर बोलने से, प्रिय के प्रति वह राग विगत नहीं हो सकता है, तेरे हृदय में उनका रंग-रूप (आकृति) ठहर गया है। यह बात तेरे चितवन से दिखाई दे रहा है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि उधर जाते ही कुछ और हो जाती है।
रीतिकालीन कवि केशवदास के शब्दों का चित्रांकन कितना सुन्दर बन पड़ा है :
''अवलोकनि अंकुस ऐंचि अनुपम भ्रू-जुगपास भलें गल मेली।
मृदुहास सुबास उठाइ मिली वहै जोन्ह की जामिनी माँझ अकेली।
अधरासव प्याइ किये बस केसवराय करी रसरीति नवेली।
बन में बृषभानुसुता सुखहीं हरि कों लै गई हेलहीं हेली॥''[11]
अकेली राधिका ने चांदनी रात में कृष्ण को अपनी चितवन, भौंहों के आकर्षण, मृदुहास और शारीरिक सुगन्ध से अपने पास बुला लिया।

फिर उन्हें अपने अधरों की मदिरा पिलाकर वश में कर लिया और वह खेल ही खेल में इस नई रस-पद्धति द्वारा कृष्ण को बन में ले गई।

श्यामा राग

आचार्य रूपगोस्वामी ने नीलिमा राग के दो भेद श्यामा और रक्तिमा बताये। प्रथम श्यामा राग माना है। उनके अनुसार भीरुता के भाव से युक्त, नीली राग से कुछ अधिक प्रकाशित और चिरकाल में उपलब्ध होने वाला राग श्यामा राग है। उदाहरणार्थ –

''पुरा कुञ्जे मञ्जुन्यवतमसयुक्तेऽपि चकिता,
मुरारेर्या पार्श्वे न तरुणि दिवाप्यन्तरम गात्।
तमालै: सैवाद्य द्विगुणिततमिस्रेऽपि मुदिता,
तमिस्रार्धे मानिन्यहह भवती तं मृगयते ॥''[12]

हे तरुणि ! तुम तो पहले उस अल्प अंधकार वाले कुञ्ज में भी चकित रहने के कारण एक मुरारी के पास नहीं जाती थी, किन्तु वही मानिनी तुम तमाल के वृक्ष से भी दुगुने अंधकार वाले कुञ्ज में भी प्रसन्न हृदय होकर अंधेरी रात में उसे ढूंढती फिर रही हो।

उज्ज्वलनीलमणि में उद्धृत उक्त श्लोक में भीरुता से युक्त भाद्र में श्रीकृष्ण विषयक जो राग है, वह कुछ-कुछ प्रकाशित हो रहा है, जो श्यामा राग को ही प्रकट करता है।

कुमारसम्भव में सद्योविवाहिता मुग्धा पार्वती की प्रियतम शिव के साथ समागम से जनित स्थिति का मनोरम चित्रण हुआ है। पार्वती का शृंगारिक क्रीड़ाओं के प्रति भय, साध्वस, कम्प तथा आकुलत्व सुन्दर रूप में वर्णित हैं। पार्वती मुग्धा है तथा शृंगार केलि से पूर्ण परिचित भी नहीं, अतएव वे भययुक्ता हैं, भीरु हैं। धीरे-धीरे उनका साध्वस (भय, डर,व्याकुलता, घबराहट) कम होता है तथा शिव के प्रति उनका राग अधिक प्रकाशित होता है।

मालविकाग्निमित्र में समागम के लिए मालविका द्वारा भय और अग्निमित्र द्वारा भय-त्याग तथा आलिंगन आदि चेष्टाओं के लिए प्रेरित करना श्यामा राग की सृष्टि करते हैं।

विक्रमोर्वशीय में उर्वशी पुरूरवा से प्रथम मिलन में सकुचाती है। यह संकोच भाव श्यामा राग के भीरुता युक्त भाव को अभिव्यक्त कर रहा है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त, शकुन्तला के प्रेम के बारे में कहता है –

''दुर्भाङ्कुरेण चरण: क्षत इत्यकाण्डे,
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।
आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती,
शाखाशु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ॥''[13]

सखियों के साथ लौटते हुए तन्वंगी शकुन्तला कुछ ही पग रखकर, सहसा दुर्भांकुर से चरण घायल हो गया, कहकर और वृक्षों शाखाओं में न उलझे हुए भी अपने वल्कल वस्त्र को छुड़ाती हुई मेरी ओर मुख करके रुक गई थी। यहाँ प्रिय की उपस्थिति में बहाना करके विलम्ब से जाना और राजा की ओर दृष्टि भर देखना, प्रिय के प्रति उनका प्रेम भाव कुछ और अधिक स्पष्ट हो गया है।

शकुन्तला सखी प्रियम्वदा से कहती है, कि मैं सोचती हूँ , किन्तु अस्वीकार के भय से मेरा हृदय काँपता है। यहाँ प्रेम तो प्रकाशित है, लेकिन भीरुता के भाव से युक्त होने के कारण श्यामा राग की स्थिति को इंगित करता है।

सुधाकर पाण्डेय लालचन्द्रिका टीका से युक्त बिहारी सतसई में कहते हैं :

''इह काँटे मो पाय लगि, लीनी मरति जीवाय।
प्रीति जनावति भीति सौं, मीत जु काढ्यौ आय ॥''[14]

सखी से कहती है, इस काँटे ने मेरे पैर में लगकर, मुझे मरने से बचा लिया है। दर्द के चिल्लाहट को सुनकर प्रिय ने आकर, जो उसके पैर का जो काँटा निकाला। उस वक्त वह प्रिय को डर से अपने प्रेम का आभास करवाती है।

भिखारीदास ने परकीया अज्ञात यौवना के प्रेम का चित्रण भी बहुत रोमांचकारी ढंग से किया है :

''हार गई तहँ मेह मिल्यो हरी कामरी ओढ़े हुल्यो उत वैसो।
आतुर आइकै अंग छपाइ बचाइ कै मोहिँ गयो जस लै सो।
'दास' न ऐसो लख्यो कबहूँ मैं अचंभो भयो वहि औसर जैसो।
स्वेद बढ्यौ त्यों लग्यो तन काँपन रोम उठयो यह कारन कैसो ॥''[15]

वर्षा ऋतु में नायिका को खेतों में कार्य करने के लिए गई थी, वहाँ कृष्ण कामरी में अपने अंगों को छुपाकर, मेरे पास से गुजर गये। तभी से मुझे ऐसा लगा, जैसे वो मुझे अपने संग ले गये हों। मैंने पहले कभी ऐसा महसूस नहीं किया था और अचम्भे की बात तो यह रही, कि मेरा शरीर कँपने लग गया, उसमें से पसीना बह निकला और रोयें खड़ी हो गई।

कुसुम्भ राग

यह क्षालित राग हृदय से अविलम्ब दूर हो जाता है, परन्तु देखते ही शीघ्र सुशोभित हो उठता है, उसे कुसुम्भ राग कहते हैं। आचार्य शिङ्गभूपाल के अनुसार जो राग चित्त में क्षण भर में ही व्याप्त हो जाता है और अत्यधिक प्रकाशित रहता है, फिर भी शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है। उनका प्रतिपादन था :

''कुसुम्भराग: स ज्ञेयो यश्चित्ते रज्यति क्षणात्।
अतिप्रकाशमानोऽपि क्षणादेव विनश्यति ॥''[16]

आचार्य रूपगोस्वामी के अनुसार कुसुम्भ राग उसे कहते हैं, जो चित्त में शीघ्र ही व्याप्त हो जाता है और अन्य राग की कान्ति से प्रकट होता है तथा उचित रीति से शोभित होता है। यानि इस राग में बाहरी चमक-दमक तो होती है, परन्तु हृदय में नहीं होती।

गाथा सप्तशती का एक प्रासंगिक उदाहरण अवलोकनीय है :

''बहुबल्लहस्स जा होइ वल्लहा कह वि पञ्च दिअहाइ।
सा किं छट्ठ मग्गगइ कुत्तो मिट्ठ व बहुअ अ ॥''[17]

जो स्त्री अनेक वल्लभाओं से प्रेम करने वाले की प्रिय होती है, वह किसी तरह पाँच दिन तो देख लेती है, किन्तु वह क्या छठे दिन की प्रतीक्षा करती है ? जो वस्तु अनुकूल होती है, वह कहीं बहुत भी होती है क्या ? अर्थात् कभी नहीं।

गाथा सप्तशती की उपर्युक्त गाथा में मानवती नायिका ने बहुवल्लभ नायक से कहा, कि मैंने केवल पाँच दिन के मिलन के लिए ही प्रणय

किया था, क्योंकि तुम्हारे प्रियजन बहुत हैं। ऐसी स्थिति में छठे दिन की प्रतीक्षा ही मैं कब करती ? तुम चाहो जिससे अनुराग करो। मेरे प्रति अनुराग की अवधि समाप्त हो गई है। यहाँ नायक का नायिका के प्रति राग कुसुम्भ पुष्प की तरह है, जो शोभायित तो होता है, किन्तु वह क्षणिक काल के लिए ही अपनी चमक दिखाता है।

नायिकाओं का अपने प्रियजनों के प्रति हाव-भाव प्रदर्शन ही आद्य रतिकेलि की गुजारिश होता है। आँखें मटकाना, नाभि प्रदर्शन आदि रागावस्था को सूचित करता है, परन्तु वह स्थिर नहीं होता है। अर्थतः, यह राग चित्त में अधिक प्रकाशित (व्याप्त) तो होता है, लेकिन अविलम्ब समाप्त भी हो जाता है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति मुनि-आश्रम में आसक्ति वस्तुतः बहुत अधिक तीव्र थी, किन्तु हस्तिनापुर पहुँचते ही समूचा प्रेम विस्मरण हो जाता है। पति का प्रेम पाने शकुन्तला जब राजमहल में पहुँचती है, तो दुष्यन्त कहता है :

''किं चात्र भवति माया परिणीता पूर्वा।''[18]

तो क्या आप (शकुन्तला) मेरे द्वारा पूर्व में विवाह की गई हैं ? इस पर शिष्य शाङ्र्गरिव ने शकुन्तला के साथ किये गये गन्धर्व विवाह का पूर्व स्थिति के बारे में जानकारी दी, जिसे राजा ने मिथ्या कहा। अतः इस तरह के प्रेम को कुसुम्भ राग की श्रेणी में रखा गया है।

भिखारीदास का एक सवैया इस भाव को और अधिक स्पष्ट करने में बखूब है :

''जान्यो मैं या तिल तेल नहीँ पहिले जब भामिनी भौंह चढ़ाई।
कान्हजू आज करामति किन्ही कहाँ लौं सराहौं महा सुघराई।
'दास' बसौ सदा गोपन मैं यह अद्‌भुत बैदई कौने सिखाई।
पाई लीलार लगाइ लला तिय-नैनन की लियो ऐंचि ललाई॥''[18]

नायिका रात भर प्रियतम के आने की बाट जोहती रही। नायक अन्य प्रेमिकाओं से रमण करके प्रातःकाल में, अपनी प्रिया के पास आया। तब प्रिया कहने लगी है, कि मैंने जान लिया, कि तुम्हारे प्रेम में कोई सच्चाई नहीं है। आपने तो आज करिश्मा ही कर दिया है। मैं आपकी कहाँ तक सराहना करूँ, आप बहुत सुन्दर लग रहे हो। दास कवि कहता है, कि वह प्रिय नायिका प्रेमी नायक से पूछ रही है, कि तुम तो सदैव गोप-ग्वालों में रहते हो, फिर यह प्रेम की अद्‌भुत रीति किस वैद्य ने सिखाई है। आपने तो आज किसी स्त्री की आँखों की ललाई ऐंच कर अपने ललाट पर लगा ली है। भावार्थ, कि तुमने अपनी स्त्री की तड़फन का खयाल नहीं किया है, बावजूद तुम अन्यत्र अन्य स्त्रियों में रमण का आनन्द लेते रहो हो और स्वयं की सुध-बुध भी खो बैठे हो।

मतिराम की नायिका प्रिय से मिलने के लिए आतुर है और प्रफुल्लित भी है, परन्तु मिलन-स्थान पर मन-भावता के न आने पर दुखी हो जाती है। कवि इसी मन्तव्य को कविता की शैली के माध्यम से व्यक्त कर रहा है :

चली 'मतिराम' प्राणप्यारे को मिलन घात,
नैसुक निहारी कै बिसारि काज घर कौ;
पियरों बदन दुख हियरे समाय रह्यौ,
कुंजन में मिलाप भयो न मिलापु गिरिधर कौ।[19]

कि, घर के काम-काज को भूलकर और किसी की ओर न देखकर हर्षित मन से नायिका प्रिय से मिलने को कुंजों में जाती है, लेकिन वहाँ कृष्ण नहीं मिलने उसका मुँह पीला हो जाता है और हृदय में दुख व्याप्त हो गया है।

अन्यच

बारी बिलसिनी कोटि हुलास बढाय कैं अंग सिँगार बनयौ;
पीतम-गेह गई चलि कैं 'मतिराम' तहाँ न मिल्यो मनभायौ।[20]

वारवनिता बड़े उछाह से तन को आभूषणों और अनेक प्रसाधनों से मोहक और आकर्षक बनाकर प्रियतम के घर चलकर गई, इसके बावजूद भी वह मनभावन नहीं मिला। भाव कि, एक ओर प्रेम की चमक थी, जबकि दूसरी ओर नहीं रही।

मञ्जिष्ठा राग

शारदातनय कहते हैं, कि जो राग क्षालित होते हुए भी हृदय से कभी जाता नहीं है और अत्यधिक शोभित होता है, उसे मञ्जिष्ठा राग कहते हैं।

आचार्य शिङ्गभूपाल के अनुसार, जो राग शीघ्र ही उत्पन्न होने वाला, अधिक काल तक नष्ट नहीं होने वाला तथा अत्यधिक शोभायमान होता है, उसे मञ्जिष्ठा राग कहते हैं

रूपगोस्वामी के अनुसार कभी भी नष्ट नहीं होने वाला, स्वयं प्रकाशित होने वाला, न कभी अपहृत किया जा सकने वाला तथा अपनी कान्ति से स्वयं ही वर्धित होने वाला राग मञ्जिष्ठा होता है।

यहाँ आरम्भिक अर्थापन के अनन्तर और प्रस्तुतियाँ दी जा रही हैं :

उत्तर रामचरित के निम्नांकित श्लोक में राम और सीता विषयक ऐसे राग का वर्णन प्राप्त होता है, जो चिरकाल तक स्थायी होने के साथ-साथ पूर्णतया शोभित भी है।

''अद्वैतसुखदुःखयोरनुगत सर्वास्ववस्थासु यद्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते॥''[21]

जो (दाम्पत्य) सुख और दुःख में एक समान रहता है और सभी अवस्थाओं का अनुगमन करता है, न ही उसे हृदयसे छीना जा सकता है, जिससे हृदय को पूर्ण विश्राम प्राप्त होता है, जिसकी प्रीति वृद्धावस्था के आने पर भी दूर नहीं की जा सकती है, जो विवाह से लेकर मरणपर्यंत परिपक्व और उत्कृष्ट प्रेम में अवस्थित रहता है। उस प्रेम बड़े पुण्यशाली ही प्राप्त कर पाते हैं, जो बहुत कठिनाई से मिलता है।

कुमारसम्भव में कालिदास ने एक सुन्दरी के मुख से कहलवाया है, कि महादेव की उत्संग-शय्या (गोद-शय्या) प्राप्त करने वाली पार्वती का तो कहना ही क्या है ? जन्म-जन्मान्तर में महेश्वर को ही पति रूप में प्राप्त करने वाली पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती का शिव के प्रति राग, निश्चित ही कभी नष्ट नहीं हुआ है, वह सदा शोभित ही हुआ है। पार्वती ने कठोर तपश्चर्या द्वारा महेश्वर को प्रियतम रूप में प्राप्त किया तथा उनकी अङ्क-शय्या सुलभ हुई। उनका यह अखंडित प्रेम आगे चलकर मोहक और आनन्द का अप्रतिम रूप बन गया था।

कालिदास इसी सन्दर्भ में आगे कहते हैं :

''वासराणि कतिचित्कथश्चन स्थाणुना रतमकारि चानया।

ज्ञात मन्मथ रसा शनैः शनैः सा मुमोच रतिदुःखशीलताम्।''[22]

अर्थात् कुछ दिनों तक तो काम-सुख से अनजान पार्वती के साथ रतिक्रीड़ा कराते रहे, परन्तु जब पार्वती ने रतिकेलि की अधीरता को छोड़कर उत्साह दिखाना प्रारम्भ किया, तो पार्वती को शिव का सम्पूर्ण वाल्लभ्य प्राप्त हो गया। अब वे दोनों निधुवन-केलि में आकण्ठ डूब चुके हैं। यह श्लोक विषय व्यंजक हैं।

रघुवंश (कालिदास) में जब इन्दुमती दिवंगत हो जाती है तब अज कहते हैं –

''समदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपश्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः।

अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिप्रत्तिनिष्ठुरः॥''[23]

तुम्हारी ये सखियाँ सुख-दुख में समान सुख-दुख का अनुभव करने वाली हैं। तुम्हारा यह बालक दशरथ द्वितीय के चन्द्रमा के समान सुन्दर है और मैं तुम्हारे प्रेम में पहले के ही समान एकरस हूँ, किन्तु इतना सब होने पर भी तुम्हारा मुझे छोड़कर चले जाना निश्चय ही बड़ा क्रूर प्रतीत हो रहा है।

विक्रमोर्वशीय में उर्वशी एक बार पुरूरवा को देख लेने के पाश्चात्, आसक्ति में पुनः पुरूरवा के यहाँ जाती है। उधर राजा भी उसके वियोग में गृहस्थ धर्म के संचालन उसके लिए स्वप्न हो गया था। उर्वशी लुप्त और पुरूरवा उन्मत्त था तथापि उर्वशी पुनः मिल गई , पुरूरवा की मानसिक उत्तप्तता समाप्त हो गई और सब सामान्य हो गया।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला कहती है, कि तुम्हारे (दुष्यन्त) प्रेम के विषय में मैं नहीं जानती, किन्तु तुम्हारे प्रति मिलन की जो अभिलाषा है, वह मेरे अंगों को रात-दिन अधिकाधिक तपा रही है। इस मार्मिक कथन पर दुष्यन्त शकुन्तला के समीप जाकर कहता है –

''तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।

ग्लपयति यथा शशाङ्क न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः॥''[24]

हे सुकुमारी ! कामदेव तुमको तो रात-दिन कष्ट देता है, बल्कि मुझको तो वह नष्ट किये जा रहा है। दिन चन्द्रमा को जितना मलिन बनाता है उतना कमलिनी को नहीं। दोनों के हृदय की पीड़ा एक-दूसरे से कम नहीं है, फिर भी उनका प्रेम परिपूर्ण है।

केशवदास की विरहिणी प्रिय के दर्शन करना चाहती है। वह मरण स्थिति में पहुँच गई है, लेकिन वह मृत्यु के आने के सभी रास्ते बंद कर देगी। कहती है :

''नीके कै किंवार दैहौं द्वार द्वार दर बार,

केसौदास आसपास सूरज न आवैगो।

छिन में छवाय लैहों ऊपर अटानि आजु,

आँगन पटाय देहौं जैसे मोहि भावैगो।

न्यारे न्यारे नारिदान मूँदिहौं झरोखे जाल,

जाइ है न पानी, पौनआवन न पावैगो।

माधव तिहारे पीछे मो पहँ मरन मूढ़,

आवन कहत सो धौं कौन पैंड़े आवैगो॥''[25]

मरणावस्था में भी नायिका की प्रिय से मिलने की प्रबल चाह है। उसे अन्तिम श्वास तक प्रिय के दर्शनों की आशा बनी हुई है, कि वे अवश्य आवेंगे। उनके आने तक मृत्यु के आने के सम्पूर्ण रास्ते बन्द कर देगी, जहाँ से पानी भी नहीं जा सकेगा और न ही पवन प्रवेश कर पायेगा। हे कृष्ण तुम्हारे पीछे मूर्ख मरन आने की कहता था सो अब वह किस रास्ते से आवेगा। यहाँ प्रियतमा का गहन प्रेम ही प्रकट हो रहा है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर ने इस राग की शिखर अनुभूति को इस कवित्त में अभिव्यंजित किया है :

गोपिकाएँ उद्धव से कहती हैं :

''नैननि कै आगे नित नाचत गुपाल रहैं,

ख्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं।

कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै,

जाके चाव भाव रचैं उर मैं अखारे हैं॥

ब्रह्म हूँ भए पै नारि एसियै बनी जौ रहैं,

तौ-तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।

यह अभिमान तौ गवैहैं ना गए हूँ प्राण,

हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं॥''[26]

उद्धव ने कृष्ण को ब्रह्म रूप में अनेक विधि से गोपियों को समझाने का भरसक प्रयास किया, परन्तु गोपियाँ उसके अदृश्य ब्रह्म को नहीं समझ सकी। उन्होंने उद्धव से कहा, कि जो हमारी आँखों के समक्ष नित उठ बाँसुरी की मधुर राग में नृत्य करते थे, वे अद्वितीय आनन्द के प्रदाता ही हमारे मन-मस्तिष्क में बसे रहें। उनकी हमारे प्रति भावना, की उमंग हमारे हृदय में सदैव बनी रहे। हमने आपके सभी प्रवचनों को सह लिया है। हमें यह अभिमान तो प्राण चले जाने पर भी नहीं समाप्त होगा, कि हम उनकी हैं वे हमारे हैं। हम इससे अधिक और नहीं जानती हैं।

मध्ययुग के सूरदास ने धनाश्री राग में गोपियों के अनन्य प्रेम को अभिव्यक्त किया है :

'' ऊधो ! मन नाहीं दस बीस।

एक हुतो सो गयो स्याम संग को आराधै ईस ?

भइँ अति सिथिल सबै माधव बिनु जथा देह बिन सीस।

स्वाँसा अटकि रहे आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस॥''[27]

हे उद्धव ! हमारे दश-बीस मन नहीं हैं, जिनमें से एक मन तुम्हारे ब्रह्म को भी समर्पित कर दें। एक था, जो भी माधव के साथ चला गया। अब आप ही बताओ तुम्हारे ब्रह्म की कौन आराधना करेगा ? हम श्रीकृष्ण के बिना उसी हालत में निष्प्राण हो गयी है जैसे बिना शिर के शरीर पड़ा हो। केवल आसा (दर्शनों) ही श्वासों का माध्यम रह गई है।

मीरा का प्रेम तो कष्टों से भरा था। राणा ने जहर पिलाने का प्रयास किया, फिर भी उसको दीवानी बनाने से नहीं रोक पाये। वह लोक-लाज की परवाह किये बिना साधुओं की संगति में मस्त विचरण करती है। वह रात-दिन जोगिया (कृष्ण) की बाट जोहती रहती है।

हरिद्रा राग

कवि कर्णपूर कहते हैं :

'अथः नैलः कौसुम्भो माञ्जीष्ठश्चाथ हारिद्रः।

रागश्चर्व्विधोऽतश्चातुर्व्विध्येन हि प्रकृतेः ॥''[28]

कि राग की चार प्रकार की प्रकृति होती है - नैल, कौसुम्भ, मांजिष्ठा और हारिद्र।

उन्होंने अलंकार कौस्तुभ में हरिद्रा राग की विशेषता के बारे में बताया है, कि :

''हरिद्रः स तू बोध्यो यात्यापि न च शोभते यस्तु।''[29]

अर्थात् कोई वस्तु हल्दी के रंग की कितनी ही सुन्दर क्यों न लगे, लेकिन वह लम्बे समय तक सुन्दर नहीं रह सकती, उसकी रंगत कम हो जाती है। तात्पर्य, कि प्रारम्भ में प्रेम गहरा होता है, फिर धीरे-धीरे कम होता जाता है।

गोपियों का कृष्ण के प्रति गहन प्रेम था। रात-दिन किसी न किसी बहाने से कृष्ण को घेरे रहती थी। वे कभी यशोदा से शिकायत करने पहुँच जाती हैं, तो कभी बाँसुरी की मधुर आवाज का पीछा करती घूमती रहती हैं। कभी गाय दुहाती हैं, तो कभी रास का आयोजन करती हैं। सूरदास की भक्ति के पदों में कृष्ण गोपियों के प्रति उद्विग्न होकर कहने लगे :

''मातु पिता तुम्हरे धौं नाहीँ।

बारंबार कमल-दल-लोचन, यह कहि-कहि पछिताहीँ।

उनकैं लाज नहीँ, बन तुमकौं आवन दीन्ही राति।

सब सुंदरी, सबै नव जोबन, निठुर अहिर की जाति।

की तुम कहि आई, की ऐसेहिँ किन्ही कैसी रीति।

सूर तुमहिँ यह नहीँ बूझियै, करी बड़ी विपरीति॥''[30]

कि, क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं ? तुम बार-बार कृष्ण पुकारती हो, न मिलने पर पश्चात्ताप करती हो। तुम्हारे माता-पिता को शर्म नहीं आती है, जो तुम्हें रात में वन में आने देते हैं। तुम यौवन से भरपूर हो, ऐसे में वे तुम्हें कैसे भेज देते हैं। तुममें इतनी भी समझ नहीं है, कि यह रीति समाज की मर्यादाओं के विपरीत है।

यह राग कुसुम्भ राग से भी हल्के दर्जे का होता है। यह न तो हृदय में ठहरता है और न अपनी चमक-दमक दिखाता है। पद्माकर कवि के काव्य की गणिका उत्का के प्रेम का विकृत रूप बिम्बित है :

''कहत सखिन सों ससिमुखी, सजि सजि सकल सिँगार।

मो मन अटको हार में, अटकि रह्यौ कित यार॥''[31]

अर्थतः, शृंगार साधनों से सज्जित गणिका सखियों से कह रही है, कि मेरा मन तो यार के गले के सोने के हार में अटका हुआ है, मुझे यार से कोई मतलब नहीं है।

अकबरकाल के कवि "गंग के हाथों में वह कारीगरी है, कि उसने अपनी चित्रकारी में अत्यन्त सुकोमल पत्ती की एक-एक नस खोलकर रख दी।''[1] उन्होंने शृंगार रस में अनेक नायिकाओं का चित्रण किया है, लेकिन प्रसंग के अनुसरण में पणसुन्दरी का आलेखन बेमिसाल है :

''चारिहु जाम लगाइ लई, तुम मानुष एक द्वै जाम जगावै।

गंग रहै तन में तनकौ बल, तौ फल सौ पल लागत पावै।

तोरी मरोरि घरीक धरी है हमारों, या हाल तुम्हारों सुभावै।

हार को देइ, उठावै को आँचर, कोरिक अंक ह्वै या घर आवै॥''[32]

नायिका नायक से कहती है, कि मैंने शराब खूब पी ली है, तुम तो एक-दो ही जाम लगाकर काम को जागृत करते हो। शरीर की शक्ति से आनन्द का फल शीघ्र प्राप्त हो जाता है। फिर कहती है, कि तुम्हारा तो यह स्वभाव है, कि अल्प समय में ही मुझे तोड़-मरोड़ (काम-केलि में) रख दोगे। तो आप मेरे मुख पर से आँचल उठाने से पहले अपने गले का हार दे दो (पता नहीं बाद में मैं भूल जाऊँ या आप का मन न देने का करे)। इस घर में बहुत से प्रेम करने वाले आते हैं।

समापन में, यही कहा जा सकता है, कि राग प्रेम भाव की ही अभिव्यक्ति है। कवि चाहे किसी भी संज्ञा से सञ्ज्ञायित करें। यह राग दोनों ओर समान ही होता हो, ऐसा नहीं है, अपितु कभी नारी का ही मुख्य होता है, पुरुष का गौण, तो कभी नारी का गौण हो जाता है (खंडिता)। राग का प्रकाश कभी मद्धम और कभी तुच्छ भी (प्रेमी-प्रेमिकाओं में) देखने को मिलता है। आज प्रेम के स्तर सामयिक हो गये हैं। इन्टरनेट के युग ने मानसिक प्रच्छन्न और प्रकाश व्यभिचार वाले प्रेम को बढ़ावा दिया है। दृदय में स्थित शृंगार भाव कब रोद्र रूप धारण करले। दम्पत्ति का स्वर्ग तक साथ जाने का विश्वास छिन-भिन्न हो चुका है। पाश्चात्य के प्रभाव और राजनीति (नारी की उन्मुक्तता और चंचलता) ने अपने ही प्राणों से प्रिय लगने वाले प्रियतम को कहाँ छोड़ दिया है! रीतिकाल के कवि की अन्तर्दृष्टि क्या युगीन थी या कालज्ञ, देखिए :

''चंचल नारि की प्रीति न कीजिये, प्रीति किये दुख होत है भारी।

काल परे कछु आन बने कब, नारि की प्रीति है प्रेम-कटारी।

लोहे को घाव दवा सों मिटै, पर चित्त को घाव न जाइ बिसारी।

गंग कहै सुनि साहि अकब्बर, नारि की प्रीति अंगार तें छारी॥''33

जिस नारी का प्रेम स्थिर नहीं है, उससे प्रेम करने पर असह्य दुःख होते हैं। काल के गुजरने के साथ कब वह प्रेम कटारी बन जाय ! आगे कवि कहता है, कि लोहे से लगी चोट तो दवा लगाने से ठीक हो जाती है, परन्तु प्रेम में किया गया धोखे का प्रहार कभी भुलाया नहीं जाता है तथा अंगार से भी अधिक दाहक होता है।

संस्कृताचार्यों और कवियों ने राग, अनुराग, पूर्वराग और पूर्वानुराग शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी व्याख्या, भेद, लक्षण और भेद-क्रम में भिन्नता दिखाई देती है। फिर भी विषय को अधिक विस्तार न देते हुए राग की व्याख्या के पश्चात् अनुराग की गुरुता पर अल्प दृष्टि डालना आवश्यक समझते हैं।

अनुराग

राग का अनुगत और अविच्छिन्न अनुराग कहलाता है। यह अनुराग युवक युवती के बीच अन्योन्य की अनुरक्ति से होता है। अनुराग का अर्थ गहरा प्रेम, स्नेह, लगाव आदि होता है। यह एक ऐसी भावना है, जो हृदय से उत्पन्न होत है और किसी व्यक्ति, वस्तु या विचार के प्रति गहरी आत्मीयता को दर्शाता है। प्रेमी और प्रेयसी के प्रेम भाव को प्रकट करने के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। नव रसों में शृंगार रस को साहित्याचार्यों ने प्रमुख रस की मान्यता दी है, जिसका स्थायी भाव रति है और उसकी मूल भावना काम है। शृंगार रस का माधुर्य वहीं तक बना रहता है, जब तक उसमें अश्लीलता न आ जाय। अनुराग की पराकाष्ठा संयोग से अधिक वियोग में देखने को मिलती है। वियोग में एक पत्नी या प्रेयसी अपने पति या प्रेमी को पाने के लिए तड़पती है, वह हरपल प्रिय-मिलन की अभिलाषा में जीती है। आचार्यों ने वियोग के मुख्यतः चार भेद बताये हैं - पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। पूर्वराग में नायक और नायिका का एक-दूसरे से

परिचय नहीं होता है । अनुराग प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन या गुण श्रवण से उत्पन्न होता है । 'नल-दमयन्ती' की कथा (महाभारत की) में दमयन्ती हंस के मुख से राजा नल के रूप, सौन्दर्य और गुण को सुनकर राजा के अनुराग में पड़ जाती है । मलिक मुहम्मद जायसी की रचना 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन हीरामन नाम के एक तोते के मुख से पद्मिनी के अप्रतिम सौन्दर्य की तारीफ सुनकर पूर्वानुराग वियोग में उन्मत्त हो जाता है :

''सुनतहि राजा गा मुरझाई । जानौं लहरि सुरुज कै आई ॥
प्रेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लागै जानै पै सोई ॥
परा सो प्रेम समुद्र अपारा । लहरहिं लहर होइ बिसँभरा ॥
बिरह-भौर होइ भाँवरि देई । खिन खिन जीउ हिलोरा लेई ॥''[34]

इतना ही नहीं, अपनी स्वकीया रानी नागमती के लाख अनुरोध को तिरस्कृत करता हुआ, योगी का वेश बनाकर, पद्मावती को पाने के लिए सिंघल द्वीप की ओर निकल पड़ता है । यही पूर्वराग का वैभव है।

इससे भगवान राम और देवी सीता भी नहीं बच सकी हैं । जनकपुरी के वासियों से राम के रूप-सौन्दर्य की उपश्रुति से, सीता के हृदय को भी पूर्वराग ने आवृत कर लिया था। रामचरित मानस में तुलसीदासजी कहते हैं :

''बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू । अवसि देखि अहिं देखन जोगू ॥
तासु वचन अति सियहि सुहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥''[35]

सखियों के साथ पुष्प वाटिका में गौरी पूजने गई सीता ने ज्यों ही राम को देखा, तो उनकी चित्तवृत्ति का अनूठापन देखिए :

''भये विलोचन चारू अचंचल । मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगंचल ॥''[36]

कि, राम की तलाश में लगे सीता के चंचल नेत्र, राम के यौवन-सौन्दर्य को देखकर अविचल हो गये । अर्थात् सीता की निर्निमेष पलकों पर रहने वाले निमि (जनक वंश का पूर्वज) ने अपना विराजनीय स्थान (पलकों) छोड़ दिया हो ।

राम ने जब पुष्पवाटिका में सखियों के साथ सुकुमारी सीता की कमनीयता और सुघड़ाई को देखा, तो अनुराग से द्रवित होकर लक्ष्मण से कहने लगे :

''तात जनक तनया यह सोई । धनुष जग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरी सखीं लै आई । करत प्रकासु फिरइ फुलवाई ॥
जासु विलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥"[37]

हे भाई ! यह जो पुष्पवाटिका को अपने सौन्दर्य से प्रकाशित कर रही है और अपनी सखियों को साथ में लेकर गौरी का पूजन करने आयी है, क्या यह वही जनक-पुत्री है, जिसके निमित्त धनुष यज्ञ हो रहा है । इसके दिव्य सौन्दर्य से मेरा पवित्र मन व्याकुलता से संवृत हो गया है ।

केशवदास ने विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत पूर्वानुराग का चित्रण किया है । कवि ने स्पष्ट रूप से एक लक्षण–दोहा भी लिखा है:

''देखतहीं दुति दंपतिहि, उपजि परत अनुराग ।
बिन देखे दुख देखियै, सो पूरब अनुराग ॥''[38]

दम्पति के परस्पर हृदय में जो प्रेम का प्रकाश उत्पन्न होता है और बिना देखे व्यथा, उसे उन्होंने पूर्वानुराग कहा है । केशवदास ने राधा और कृष्ण के पूर्वानुराग को प्रच्छन्न और प्रकाश में विभाजित किया है। राधा के प्रच्छन्न पूर्वानुराग की सम्यक् रचना करते हुए कहते हैं :

''फूल न दिखाव सूल फूलत है हरि बिनु,
दूरि करि माल बाल ब्याल सी लगति है ।
चँवर चलाव जिन बीजन हलाव मति ,
केसव सुगंध बाय बाय-सी लगति है ।
चंदन चढ़ाव जिन ताप सी चढ़ति तन,
कुंकुम न लाव अंग आग सी लगति है ।
बार बार बरजत बावरी है वारौं आनि,
बीरी न खवाब बीर बिष सी लगति है ॥''[39]

कृष्ण के बिना फूल काँटें और माला सर्प के समान दुखदाई लगते हैं । चँवर और पंखी की हवा अच्छी नहीं लगती है । अब तो सुगन्ध, चन्दन, कुंकुम भी शरीर में व्याधि, ताप बढ़ाने वाले और अग्निवत लगते हैं । उस नायिका को कितनी बार मना किया था, लेकिन वह पगली प्रेमानुराग में फँस गई । हे सखी ! मुझे पान की गिलौरी मत खिलावे, विष सी लगती है ।

कृष्ण के प्रकाश पूर्वानुराग का एक उदाहरण देखने के लिए उपयुक्त है :

'' भाँति भली बृषभानलली जब तें अँखियाँ अँखियानि सों जोरी ।
भौंह चढ़ाइ कछू डरपाइ बुलाइ लई हँसि कै बस भोरी।
केसव काहू त्यौं ता दिन तें रुचि क न बिलोकति केतौ निहोरी ।
लीलत है सब हि के सिँगार अँगारनि ज्यों बिन चंद चकोरी ॥''[40]

जबसे राधा की आँखें कृष्ण से मिली (अनुराग) हैं, तभी से इन भोलीभाली आँखों को अपनी (राधा ने) भौंहों चढ़ाकर, कुछ डराकर और फिर हँसकर उन्हें वश में कर लिया है । तभी से ये किसी को रुचि से नहीं देखती हैं । मैंने आँखों को खूब मनाया, लेकिन सब व्यर्थ गया । ये मेरे हृदय की उमंगों को उसी रूप में खाये जा रही हैं जैसे बिना चन्द्रमा के चकोरी अंगारे निगलने लगती है ।

केशवदास ने कविप्रिया में भी पूर्वानुराग विरह को इस प्रकार दृष्टव्य बनाया है :

''भूलि गयो सब सों रस रोष,
मिटे भव के भ्रम, रैनि विभातौ ।
को अपनो पर को, पहिचान न ,
जानति नाहिनै सीतल तातो ।
नेकु ही में बृषभानु लली,
की भई सु जाकी कही परै बातौ ।
एकहि बेर न जानिये केसव,
काहे ते छूटि गये सुख सातौ ॥''[41]

अंकुरित यौवना राधा कृष्ण के अनुराग में पड़ने पर सब रस, रोष, भ्रम, सुखद रात, अपना, पराया, पहचान, ठंडा, गर्म आदि एक ही बार में भूल जाती है । उसके सातों सुख अन्तिम हो गये ।

पूर्वानुराग में वियोग की दशों दिशाएँ विद्यमान रहती हैं । इसके उदय का सशक्त उपदान प्रत्यक्ष दर्शन होता है । अंग्रेज़ी में इसे Love at First Sight कहते हैं और यह बहुत ही सम्मोहक और प्रभावी है । इसे वृष्टानुराग भी कहते हैं । रीतिकालीन कवि रसलीन की कथन-शैली को देखिए :

''हिये मटुकिया माहि मथि दीठि रई सो ग्वारि ।
मो मन माखन लै गई देह दहि सो डारि ॥''[42]

कि, वह (यौवन में मदमाती) ग्वालिन हृदय रूपी मटकिया को अपने दृग रूपी मथनी से मथ गयी और नायक का मन रूपी मक्खन निकालकर ले गयी, अब तो केवल देह रूपी छाछ शेष रह गयी है ।

संदर्भ-सूची

1. भावप्रकाश (चतुर्थोऽधिकार), शारदातनय, भाष्य.मदनमोहन अग्रवाल, संस्करण 2020, पृष्ठ सं.113
2. रसार्णव (द्वितीय विलास), शिङ्गभूपाल, संपा. जमुना पाठक, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सन् 2004, श्लोक सं.116
3. वही, श्लोक सं. 118 एवं 123
4. वही, श्लोक सं. 118 एवं 123
5. साहित्यदर्पण (तृतीय परिच्छेद), विश्वनाथ, व्याख्या हरेकान्त मिश्र, चौखम्भा ओरियंटलिया, दिल्ली, संस्करण 2017, श्लोक 194, पृ. 304
6. उज्ज्वलनीलमणि (स्थायी भाव प्रकरण), रूपगोस्वामी, व्याख्याकार विश्वनाथ चक्रवर्ती, प्रकाशन निर्णयासागर यंत्रालय, मुम्बई, संस्करण 1913, पृ. 366, श्लोक स. 120
7. कुमारसम्भव,कालिदास, भाष्यकार प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, श्लोक सं. 1/53
8. विक्रमोर्वशीयम्, कालिदास, पं. सुरेन्द्रनाथ शास्त्री, निर्णयासागर मुद्रालय, बम्बई, संस्करण संवत् 1942, श्लोक सं. 2/18
9. अभिज्ञान शाकुंतलम् – कालिदास, सम्पादक निरूपण विद्यालङ्कार, प्रकाशक साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण 2015, श्लोक 1/31
10. बिहारी सतसई, जगन्नाथ दास रत्नाकर, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण 2018, दोहा सं. 631
11. रसिकप्रिया (षष्ठ प्रभाव), केशवदास, टीका विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याण एण्ड ब्रदर्श, ज्ञानवापी, वाराणसी, संस्करण संवत् सवैया छंद सं. 19
12. उज्ज्वलनीलमणि (स्थायी भाव प्रकरण), रूपगोस्वामी, व्याख्याकार विश्वनाथ चक्रवर्ती, प्रकाशन निर्णयासागर यंत्रालय, मुम्बई, संस्करण1913, पृ. 368, श्लोक स. 122
13. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास, सम्पादक निरूपण विद्यालङ्कार, प्रकाशक साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण 2015, श्लोक 2/12
14. बिहारी सतसई (लालचंद्रिका), सुधाकर पांडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
15. भिखारिदास ग्रंथावली (शृंगार निर्णय), संपा. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2017, छंद सं. 129
16. रसार्णव वसुधाकर: (द्वितीय विलास), शिङ्गभूपाल, संपा. जमुना पाठक, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, सन् 2004, श्लोक 118
17. गाथा सप्तशती, हाल सातवाहन, व्याख्या जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, संस्करण संवत्, गाथा 1/72
18. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास, सम्पादक निरूपण विद्यालङ्कार, प्रकाशक साहित्य भण्डार,मेरठ, संस्करण 2015, श्लोक 2/12
19. भिखारीदास ग्रंथावली-प्रथम खण्ड (शृंगार निर्णय), संपा. विश्वनाथप्रसाद मिश्र, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी संवत् 2013, छंद सं. 190
20. मतिराम ग्रंथावली (रसराज), संपादक कृष्ण बिहारी मिश्र, प्रकाशक गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, संस्कारण संवत्, छंद सं. 151
21. वही, छंद सं. 154
22. उत्तररामचरित, भवभूति, व्याख्या. रमाकान्त त्रिपाठी, चौखंभा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2020, श्लोक 1/39
23. कुमारसम्भव, कालिदास, भाष्यकार प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखंभा विद्या भवन, वाराणसी, संस्करण 2019, श्लोक सं. 8/13
24. रघुवंश, कालिदास, व्याख्या. खेमराज श्रीकृष्ण दासन, प्रकाशन-श्रीवेङ्केटेश्वर स्ट्रीम् प्रेस, संस्करण संवत् 1964, श्लोक सं. 8/65
25. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालिदास, संपादक वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, संस्करण 1981-82, श्लोक 3/14
26. कविप्रिया (दसवां प्रभाव), केशवदास, संपादक लाला भगवानदीन, नेशनल प्रेस, बनारस, संस्करण संवत् 1982, कवित्त सं. 16
27. उद्धव शतक, जगन्नाथ 'रत्नाकर', संपा. वसुदेव सिंह, प्रकाशक कला मन्दिर, दिल्ली, संस्करण, कवित्त सं. 59
28. भ्रमरगीत-सार, सूरदास, संपा. रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक साहित्य सेवा सदन, बनारस, संस्कारण 1999, पद सं. 210
29. अलङ्कारकौस्तुभ (पञ्चम् करण:), कर्णपूर, संपा. शिवप्रसाद भट्टाचार्य, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजस्थान, सन् 1926, श्लोक 79
30. जगद्विनोद, पद्माकर, संपादक विश्वनाथ प्रसाद, वाणी-वितान प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण संवत् 2022, छंद सं. 203
31. सूरसागर (खण्ड-1 एवं दसम स्कन्ध) , संपादक रामचन्द्र शुक्ल, संस्करण 1952, टोपिक्स वनस्थली, कलेक्शन डिजिटल लाइब्रेरी, पद संख्या 1013
32. कवि गंग-रचनावली (भूमिका), संपा. बटे कृष्ण, प्रकाशक राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर (राज.), संस्करण 2016, पृ. 41
33. वही, छंद सं. 158
34. वही, छंद सं. 390
35. जायसी ग्रंथावली (पद्मावत का प्रेम खण्ड), संपा. रामचन्द्र शुक्ल, ना. प्रचा. सभा, वाराणसी, संस्करण कड़वक 11
36. रामचरित मानस (बालकाण्ड), तुलसीदास, गीताप्रेस प्रेस, गोरखपुर, संस्करण, छंद सं. 229
37. वही, चौपाई छंद सं. 230
38. रामचरित मानस (बालकाण्ड), तुलसीदास, प्रकाशक गोविन्दभवन-कार्यालय गीतप्रेस, गोरखपुर, संस्करण, छंद सं. 231
39. रसिकप्रिया (अष्टम प्रभाव), केशवदास, टीका विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याण एण्ड ब्रदर्श, ज्ञानवापी, वाराणसी, छंद सं. 8/3
40. वही, छंद सं. 8/4
41. रसिकप्रिया (अष्टम प्रभाव), केशवदास, टीका विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रकाशक कल्याण एण्ड ब्रदर्श, ज्ञानवापी, वाराणसी, छंद सं. 8/7
42. प्रियप्रकाश (आठवाँ प्रभाव), केशवदास, संपा. लाला भगवानदीन, मुद्रक नेशनल प्रेस, बनारस कैंट, संवत् 1982, छंद 43